हिन्दी प्रकोष्ठ | संवादपत्र

भाषायी

तृतीय अंक 2024

विज्ञानं ब्रह्म

:: संपादक ::
डॉ. अमिताभ विक्रम द्विवेदी
(नोडल अधिकारी, हिन्दी प्रकोष्ठ)
:: सह-संपादक ::
मिलिन्द शुक्ल
(छात्र सचिव, हिन्दी प्रकोष्ठ)

:: संरक्षक ::
प्रो. प्रगति कुमार
(माननीय कुलपति)

महान श्री राम भक्त एवं विद्वता मूर्ति गोस्वामी तुलसीदास का जन्म उत्तर प्रदेश के चित्रकूट जिले के राजापुर ग्राम में हुलसी और आत्माराम दुबे के घर संवत 1554 को हुआ था। बचपन में उनका नाम रामबोला रखा गया। गोस्वामी तुलसीदास के गुरु नरहरि दास थे, साथ ही गोस्वामी जी रामानंदी सम्प्रदाय से संबंधित थे। गोस्वामी जी ने सर्वप्रथम रामायण की रचना संस्कृत में थी तदुपरांत भगवान शिव की प्रेरणा से उन्होने श्री राम चरित मानस की रचना अवधी में की, जो आज प्रत्येक रामभक्त के लिए पूज्यनीय है व लोकप्रिय है। विप्रश्रेष्ठ गोस्वामी तुलसीदास ने संवत् 1631 की राम नवमी के दिन ग्रहों की स्थिति लगभग वैसी ही थी जैसी त्रेतायुग में राम जन्म के समय थी। इसी पावन दिवस पर प्रातःकाल तुलसीदास जी ने श्रीरामचरितमानस की रचना प्रारम्भ की। दो वर्ष, सात महीने और छब्बीस दिन में ग्रन्थ की रचना पूर्ण हुई। संवत् 1633 में मार्गशीर्ष मास में श्री राम विवाह के दिन सातों कांड को पूर्ण किया। गोस्वामी जी ने पार्वती-मंगल, विनय पत्रिका, दोहावली, हनुमान-बाहुक, हनुमान चालीसा आदि महान रचनाएं मानव समाज को प्रदान की।

• रानी की वाव (पाटन, गुजरात) में श्री राम की प्रतिमा

हिन्दी प्रकोष्ठ
श्री माता वैष्णो देवी विश्वविद्यालय
कटड़ा, संघशासित जम्मू एवं कश्मीर,
भारत-182320
hindicell.smvdu.ac.in
hindi.cell@smvdu.ac.in

अनुक्रमणिका

1. भाषिक विमर्श	1
2. विस्मृत कवि	4
3. भाषा-बोली विशेष	7
4. लेख विशेष	9
5. कलयुग	13
6. मधुबनी चित्रकला	15

ज्ञान-विज्ञानं विमुक्तये

ज्ञान मुक्त करता है।

मृग से मुर्गा

संस्कृत में मृग' शब्द का प्रयोग-वन्य पशु या जंगली जानवर; किसी भी प्रकार के अहेर या आखेट (विशेषकर हिरन या हिरन का बच्चा; चौसिंगा हिरन, चिंकारा, चीतल तथा कस्तूरी-हिरन); ऊँचाई पर मंडराने वाला बड़ा पक्षी; मार्गशीर्ष तथा मकर राशि आदि-अनेक अर्थों में होता है लेकिन इसका आरंभिक एवं मुख्य अर्थ वन्य पशु है। संस्कृत में प्रयुक्त मृगराज (=पशुओं का राजा अर्थात् 'सिंह'); शाखा मृग (=शाखाओं पर रहने वाला पशु अर्थात् बंदर); शालामृग (=घरों के निकट विचरण करने वाला पशु अर्थात् कुता या गीरह) तया स्थान मृग (लोकमान्यता के अनुसार एक ही या मृग बराह ये वाले पक्ष अर्थात बाजा, परिमार को कपालला आदि समस्त पदों में मृग का यह 'पशुवाला' अर्थ स्पष्टतः देखा जा मगरमच्छ 'मगों या वन्य पशुओं की तलाश' अर्थात 'आखेट' (शिकार) के बोधक संस्कृत शब्द मृगया में भी मृग का 'पशुवाला' मूलार्थ एक सीमा तक विद्यमान संस्कृत कि मृग के ऊपर उल्लिखित अर्थों में संकेत किया गया है कि अहेर या शिवार 'का संबंध मुख्यतया 'हिरन' या 'कस्तूरी-हिरन' से था इसलिए संस्कृत के परवर्ती प्रयोगों में मृग का अर्थ इन्हीं तक सीमित हो गया। परवर्ती संस्कृत में 'हिरनी या 'हिरणी' का बोधक शब्द मृगी भी प्राप्त होता है।

संस्कृत की मृग् धातु {=तलाश करना, खोजना, प्राप्ति के लिए, उद्यम करना (किसी को) लक्ष्य बनाना आदि) पशु-बोधक मृग शब्द के आधार पर निर्मित मानी गई है। मार्ग (माँगना आदि) तथा मृञ् (मिटाना; माँजना; नष्ट करना; जीतना; जाना, इधर-उधर घूमना, भ्रमण करना) धातुओं के साथ भी इसके अर्थ गड्ड-मड्ड होते दिखाई देते हैं। अतः इस बात की संभावना है कि इन धातुओं का मूल स्रोत एक ही रहा हो।

संस्कृत में मृग (=पशु) से ही 'रास्ता, पथ या सड़क' का बोधक मार्ग शब्द बनता है। मूलतः वह रास्ता जहाँ से मृग या वन्य पशु जाते हों। वैसे ही जैसे रथों या वाहनों के चलने से जो रास्ते बने वे रथ्या (सड़क) कहलाए। कालांतर में मृग वीथिका या मृग वीथी जैसे शब्द भी प्रचलित हो गए जो मृगों या हिरनों की डार द्वारा बनाए गए रास्ते के लिए प्रयुक्त होते हैं।

उच्चारण भेद से मृग शब्द अनेक भाषाओं में प्रयुक्त होता है। उदाहरण के लिए पालि में यह मग तथा मिग- (हिरन) रूप में मिलता है तो प्राकृत में मिय और मय- (=हिरन; पशु, जानवर) रूप में। तोरवाली में इसका रूप मींग बन गया और अर्थ भी बदलकर 'तेंदुआ' हो गया। पश्चिमी पहाड़ी की भद्रवाही बोली में यह मिगू (बहुवचन 'मिग्गाँ') रूप में व्यवहृत होता है और 'मारखोर या जंगली बकरी' का अर्थ देता है। इसी प्रकार धर्मशाला (जि. कांगड़ा) के आस-पास की बोली में इसका रूप मिर्ग है जो 'तेंदुए' का बोधक है। सिंहली में यह मुवा तथा मियुला रूप में प्रयुक्त होता है। चित्राल की एक बोली फलूड़ा (दरद परिवार) में यह प्रिंग बन गया है जहाँ इसका अर्थ है 'मारखोर या जंगली बकरी' । शीणा में मृग का रूप ब्रिङ्ग है और अर्थ हो गया है पशु के स्थान पर 'पक्षी' ।। अनेक क्षेत्रों में संस्कृत 'ऋ' का उच्चारण 'रु' जैसा होता है। तमिल, मराठी, गुजराती तथा उड़िया आदि भाषाओं में आज भी 'संस्कृत' को 'संस्क्त' तया 'घृणा' को 'ध्रुणा' बोला जाता है।

इसी प्रकार संस्कृत का मृग जब फारसी में पहुँचा तो वहाँ यह मुर्ग रूप में उच्चरित होने लगा। ध्वनि परिवर्तन के साथ-साथ वहाँ इसमें अर्थ का परिवर्तन भी हुआ और 'पशु' के स्थान पर 'पक्षी' का वावर हो गया। इसीलिए फारसी शुतुर मुर्ग का अर्थ है-शुतुर अर्थात् 'ऊंट' जैसा पक्षी । इसी प्रकार पुर्ग-इ-आबी (हिन्दी मुर्गाबी) का मूल अर्थ है- 'जलपक्षी', जो अपन रूढ़ अर्थ में बत्तख से मिलते-जुलते एवं आकार में उससे छोटे जलपक्षी विशेष के लिए प्रयुक्त होता है। फा. में मुर्मू शब्द भी मिलता है जो 'चिड़िया' या 'गारवा' का बोधक है।

फारसी में मुर्ग के अर्थ में और भी विकास हुआ तथा यह पक्षी के स्थान पर एक पक्षी विशेष का बोधक हो गया जो मुँह अंधेरे बांग देने के लिए प्रसिद्ध है। इस प्रकार मुर्ग का अर्थ मुर्गा हो गया। मुर्गबाज़ी (मुर्गे लड़ाना) तथा पुर्णबान (मुर्गे लड़ाने वाला) जैसे फारसी शब्दों में मुर्ग का यही नया अर्थ समाविष्ट है। फारसी से यह हिन्दी-उर्दू में पहुँचा और थोड़े ध्वनि-परिवर्तन के साथ मुर्गा बन गया। छोटे से मुर्गे का प्रभाव ऐसा बढ़ा कि उससे प्रेरित होकर कुछ आदमी भी मुर्गे बनने और बनाने लगे तथा कुछ मुर्ग लड़ाते हुए मुर्गबाज बन गए।

संदर्भ/टिप्पणियाँ

1. मोनियर विलियम्स ('ए संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी') ने संभावना व्यक्त की है कि मृग का अर्थ मूलतः 'इधर-उधर घूमने वाला, आवारा या भटकने वाला' रहा होगा।
2. मृग अर्थात् 'वन्यपशु' के विपरीत पालतू या 'पाश' में बाँधकर रखे जाने वाले जानवर को 'पशु' कहा जाता था।
3. फारसी में यह शब्द शुतुर के साथ-साथ शुतूर तथा उस्तूर रूप में भी युक्त होता है। ये सभी रूप संस्कृत उष्ट्र (ऊँट) के ही विकसित रूप हैं।
4. 'ए पर्सियन इंग्लिश डिक्शनरी' -स्टाइनगास।

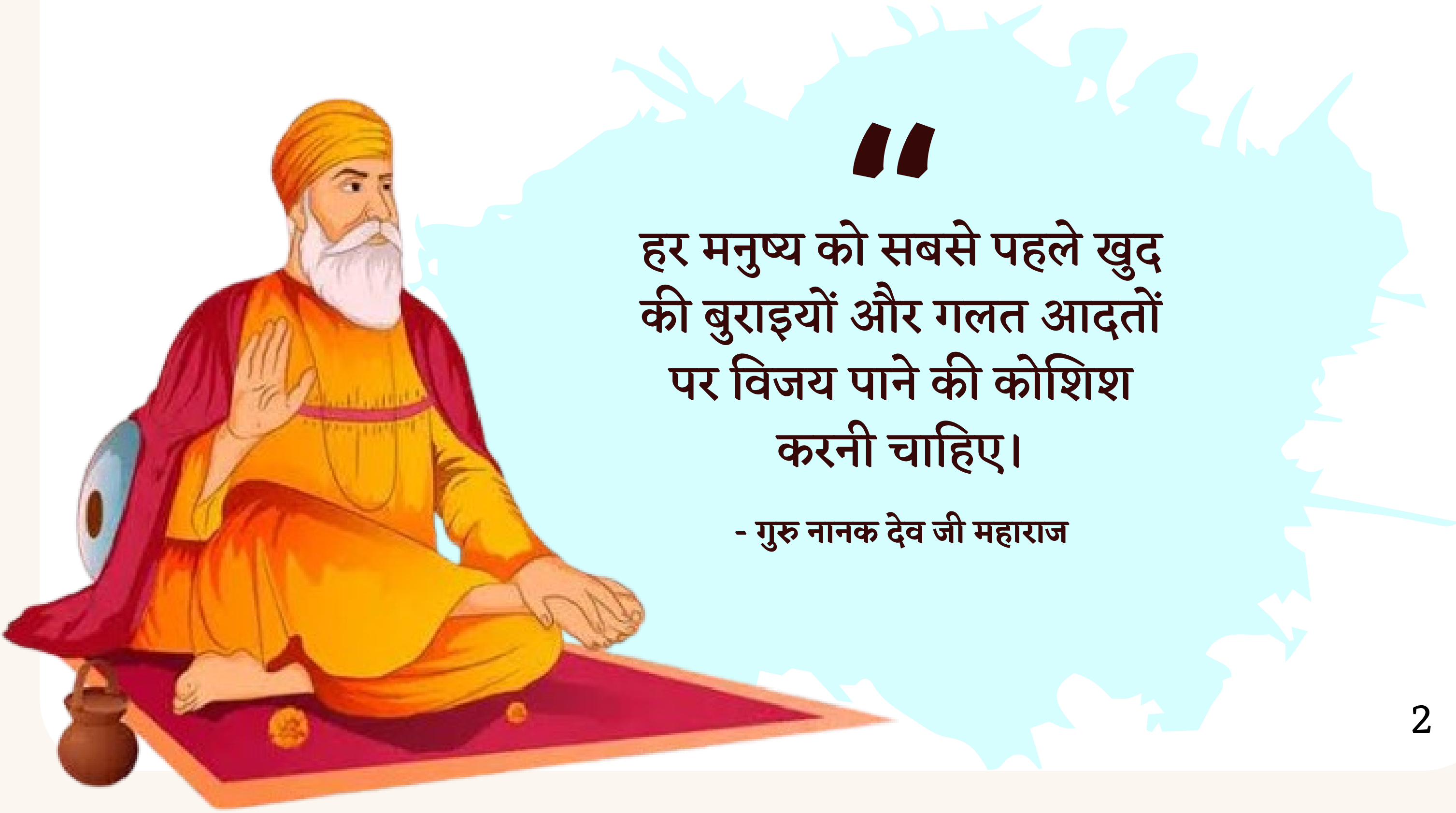

कांस्टेबल

हिंदी में प्रयुक्त अंग्रेजी के कांस्टेबल शब्द का मूल उच्चारण वहाँ कॅन्स्टॅवॅल है। इस शब्द के उद्गम की कहानी लैटिन भाषा के Comes stabuli से आरंभ होती है जहाँ इस का शब्दार्थ 'घुड़साल या अश्वशाला का मुखिया' (Count of a stable) है। धीरे-धीरे इस में अर्थ-विकास हुआ और यह 'रोमन साम्राज्य के एक उच्चाधिकारी' के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा और बाद में इसको फ्रैंक (Frank) लोगों ने भी अपना लिया। लैटिन से चलकर यह शब्द प्राचीन फ्रांसीसी भाषा में पहुँचा जहाँ इसका रूप बदलकर Conestable हो गया। फ्रांसीसी से इसे अंग्रेजी ने 'Constable' रूप में ग्रहण किया जो वहाँ निम्नांकित अर्थों में प्रयुक्त होता है :

1. (ब्रिटेन में) पुलिस या आरक्षी दल का एक सदस्य; सब से छोटे पद का पुलिस अधिकारी।
2. राजमहल, शाही दुर्ग या परकोटे से घिरे किसी नगर का प्रशासक या संरक्षक ।
3. राजमहल या राजघराने में सर्वोच्च अधिकारी या प्रबंधक। (अब यह अर्थ प्रचलित नहीं है और इतिहास का विषय हो गया है)।

लेकिन, हिंदी में कांस्टेबल का प्रयोग केवल पुलिस के 'सिपाही' या 'आरक्षी' के अर्थ में होता है। अंग्रेजी में कांस्टेबल के लिए कभी-कभी पीस-ऑफीसर (Peace Officer) शब्द का प्रयोग भी किया जाता है अर्थात् 'शान्ति स्थापित करने वाला पुलिसकर्मी' ।

अगर लैटिन भाषा के Comes stabuli की चर्चा को और आगे ले जाएँ तो यह लैटिन भाषा के दो शब्दों 'Comitem तथा stabuli' के योग से बना है। इसमें Comitem का मूल अर्थ है 'साथ चलने वाला (Com 'साथ'; itum 'जाना') अर्थात् साथी । इसी Comitem से विकसित होकर अंग्रेजी का काउंट/Count (=इंग्लैंड के राजतंत्र में एक पद) शब्द बना है। इसी Comitem ने परिवर्तित होते-होते Comes और फिर Con- का रूप धारण कर लिया जो Constable में दिखाई देता है। दूसरे शब्द stabuli का अर्थ 'घुड़साल' है जिससे इसी अर्थ का बोधक अंग्रेजी का स्टेबल/Stable (=अस्तबल, अश्वशाला या घुड़साल) शब्द बनता है। इस प्रकार कांस्टेबल के पूर्वज लैटिन Comes stabuli का मूल अर्थ या 'घुड़साल का साथी' या 'मुख्य अश्वपाल', जो वहाँ से चलकर 'जागीरदार या सामंत', 'राजमहल या दुर्ग का संरक्षक' आदि से होते हुए पुलिस तक पहुँच गया। यहाँ यह जानना भी बड़ा रोचक होगा कि अंग्रेज के मार्शल/marshal शब्द का मूल अर्थ भी (घोड़ों का) सेवक या साईस था जो तरक्की करते-करते सेना का फील्ड मार्शल बन बैठा।

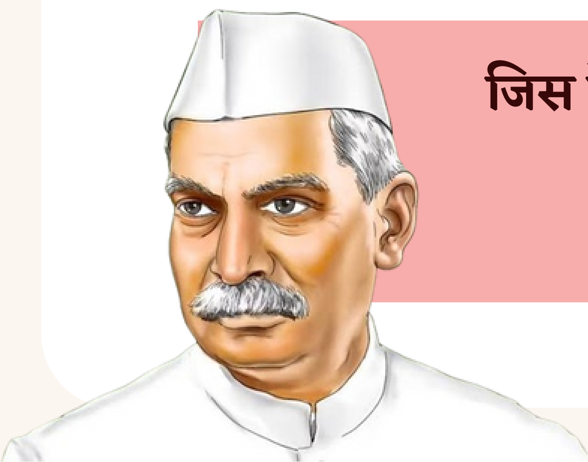

जिस देश को अपनी भाषा और साहित्य का गौरव का अनुभव नहीं है, वह उन्नत नहीं हो सकता।

- डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

देव

रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ आचार्यकवियों में परिगणित कवि देवदत्त का जन्म संवत् 1730 में इटावा नगर में बिहारीलाल द्विवेदी के घर कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में हुआ था। 29 वर्ष की अवस्था में ये इटावा छोड़कर मैनपुरी के कुसुमड़ा गाँव चले आये थे। इन्होंने सोलह वर्ष की अवस्था में 'भावविलास' की रचना की और 94 वर्ष की अवस्था में 'सुखसागरतरंग' की। असाधारण कवित्व वाले इस अक्खड़ कवि को आठ आश्रयदाताओं के यहाँ भटकना पड़ा। इनमें आजमशाह, भवानीदत्त वैश्य, फफूँद के कुशल सिंह, पिहानी के अधिपति अकबर अली ख़ाँ तथा भगवन्तराय खीची के नाम भी सम्मिलित हैं। इनकी मृत्यु 96 वर्ष की अवस्था में संवत् 1825 में कुसुमड़ा में ही हुई। देव ने विशाल साहित्य की रचना की। इनके ग्रन्थों की संख्या 27 मानी जाती है, लेकिन कुछ ग्रन्थ दो-दो नामों से भी भिन्न-भिन्न आश्रयदाताओं को समर्पित कर दिये गये हैं। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थों में 'रसविलास', 'भावविलास', 'काव्यरसायन', 'देवमायाप्रपंच', 'प्रेमचन्द्रिका', 'सुखसागरतरंग' आदि हैं। इनके १६ प्रामाणिक ग्रन्थों को डा. लक्ष्मीधर मालवीय ने सम्पादित 'देवग्रन्थावली' का प्रकाशन करा दिया है।

विक्रमसाहि

छत्रसाल के वंशधर चरखारीनरेश विजयवहादुर ही विक्रमसाहि साहित्यिक नाम से जाने जाते हैं। इनके दो ग्रन्थ मिलते हैं विक्रमविरुदावली और विक्रमसतसई।

इनमें 'विक्रमसतसई' अधिक प्रसिद्ध है और श्यामसुन्दर दास सम्पादित 'सतमईसप्तक' में प्रकाशित हो चुकी है। इस पर एक टीका भी लिखी गयी। खोज में इनका एक ग्रन्थ 'हरिभक्तिविलास' (भागवत का भावानुवाद, संवत् 1880) भी मिला है। विक्रमसाहि सत्कवि ही नहीं, अच्छे आश्रयदाता भी थे। इनके दरबार में खुमान (मान), बिहारीलाल उपनाम भोज, प्रतापसाहि और प्रयागदास जैसे सत्कवि रहे। विक्रमसाहि का देहावसान संवत् 1886 में हुआ।

मकरंद

'मकरन्दवाणी' (संवतु 1818) की रचना करने वाले हित मकरन्द दीक्षा में पूर्व श्रृंगारिक छन्द लिखते थे। सेंगर साहब इनका उपस्थितिकाल संवत् 1814 मानते हैं, लेकिन में उससे पहले कभी लोकप्रिय हो चुके थे। इनका एक कवित्त 'अलंकाररत्नाकर' (संवत् 1798) में उद्धुत है।

“

वारिधि के कुंभ-भव, घन बन दावानल,
तरुन तिमिर हू के किरन समाज हौ ।
कंस के कन्हैया, कामधेनु हू के कंट काल,
कैटभ के कालिका, बिहंगम के बाज हौ ।
भूषन भनत जम जालिम के सचीपति,
पन्नग के कुल के प्रबल पच्छिराज हौ ।
रावन के राम, कार्तबीज' के परसुराम,
दिल्लीपति दिग्गज के सेर सिवराज हौ ॥

- कविराज भूषण

(भूषण रचित शिवा बावनी से उद्धृत)

”

अर्थ समझने हेतु स्कैन करें:

सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम् ।
न नित्यं लभते दुःखं न नित्यं लभते सुखम् ॥

दुख हमेशा सुख के बाद आता है और सुख दुख के बाद। न दुःख न सुख शाश्वत है।

(महाभारत १२-२६-२३)

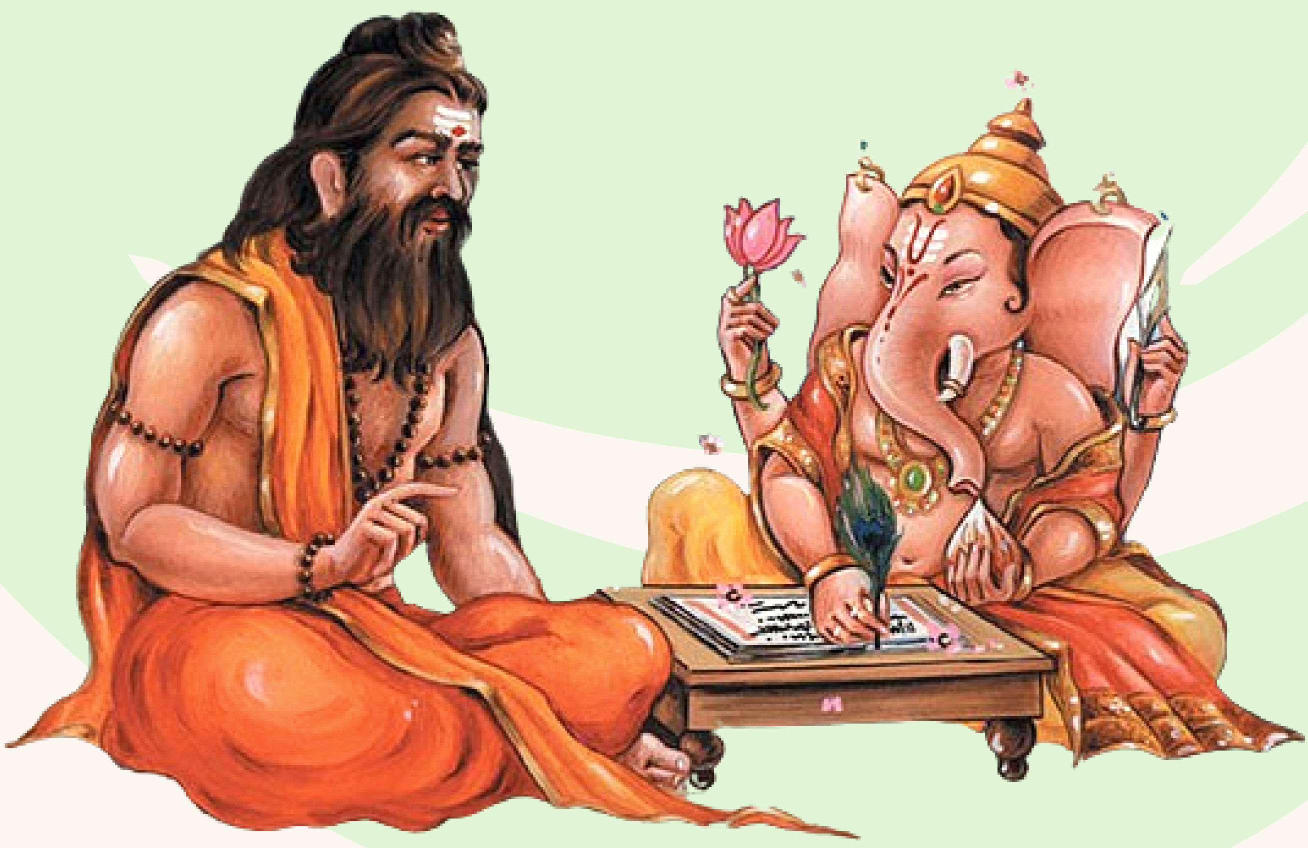

भद्रवाही भाषा के विषय में

इस क्षेत्र में भद्रवाही भाषा (भारत-यूरोपीय परिवार समूह की भाषा) बोली जाती है। भारत में जम्मू और कश्मीर राज्य के जम्मू क्षेत्र के पूर्वी भाग में डोडा जिले के भद्रवाह (प्राचीन नाम भद्रकाशी) में, यह जिला उत्तर में कश्मीर के अनंतनाग जिले, उत्तर पूर्व में किश्तवाड़ जिले, दक्षिण में हिमाचल प्रदेश के चंबा क्षेत्र, दक्षिण में कठुआ जिले, दक्षिण पश्चिम में उधमपुर जिले और पश्चिम में रामबन जिले से घिरा हुआ है। सिराजी भी डोडा जिले की एक प्रमुख भाषा है, लेकिन यह मुख्य रूप से डोडा शहर और इसके आसपास के गांवों में बोली जाती है। भारत की जनगणना के अनुसार 2011 में जम्मू और कश्मीर में डोडा जिले की जनसंख्या 409,576 थी, जिसमें से 52.0% पुरुष और 48.0% महिलाएं थीं। 2011 में भद्रवाही बोलने वालों की आबादी लगभग 250,000 थी।

मानक भद्रवाही भारत गणराज्य के जम्मू और कश्मीर राज्य के डोडा जिले के भद्रवाह शहर में बोली जाती है। यह भाषा पंगवाली, सिराजी, पादरी और भलेसी भाषाओं के साथ शाब्दिक समानता दर्शाती है। भद्रवाही के लिए 2009 के दस्तावेज़ में एसआईएल इंटरनेशनल ने भद्रवाही को बीएचडी के रूप में पहचाना। भद्रवाही की उत्पत्ति का पता प्राचीन काल से लगाया जा सकता है जब जम्मू और कश्मीर एक हिंदू (अधिकांश आबादी हिंदू धर्म का अनुयायी था) राज्य था। जैसे ही लगभग 400 ईसा पूर्व इस क्षेत्र में बौद्ध धर्म का प्रसार शुरू हुआ, बौद्ध पुजारियों ने बुद्ध की शिक्षाओं को फैलाने के लिए संस्कृत के अलावा अन्य भाषा की खोज की।

बौद्धों ने पहाड़ी को अपने उपदेशों की भाषा के रूप में अपनाया और भाषा को लिखने के लिए दुग्गल आदि विभिन्न लिपियों का प्रयोग किया गया। यह पहाड़ी भाषा का चरमोत्कर्ष था। हालाँकि, बौद्ध धर्म के पतन और फिर कश्मीर में पुनः हिंदू धर्म के उदय के साथ पहाड़ी भाषा का पतन साबित हुआ। पहाड़ी भाषा को त्याग दिया गया और यह स्थानीय लोगों की दया पर निर्भर रही।

भद्रवाह को 'नागों की भूमि' (सांपों की भूमि) के नाम से भी जाना जाता है। भद्रवाह शहर को हेट्टरी नगर के नाम से जाना जाता था और उससे पहले, डोंगा और उधो नगर जैसे अन्य शहर थे। दोनों नगर गाँवों के आसपास स्थित थे जो वर्तमान भद्रवाह शहर से लगभग 3 किलोमीटर पूर्व में हैं।

कैलाश मेहरा साधु, बशीर अहमद मस्ताना, गुलाम नबी गोनी, बसीर चराग और मास्टर दीना नाथ जैसे कवि और गायक इस भाषा की मौखिक संस्कृति के विकास के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार हैं। भद्रवाह तहसील का अपना रेडियो स्टेशन है। भद्रवाह कार्यक्रम प्रत्येक रविवार को सुबह 8 बजे स्थानीय रेडियो स्टेशन पर प्रसारित किया जाता है।

भद्रवाही भाषा के विषय में

भद्रवाही भाषा उत्तरी क्षेत्र पश्चिमी पहाड़ी भाषाओं के अंतर्गत आती है। 'पहाड़ी' (पहाड़ी) शब्द की उत्पत्ति हिंदी के शब्द 'पहाड़' से हुई है। पश्चिमी पहाड़ी 17 विभिन्न भाषाओं का एक समूह है जो जम्मू और कश्मीर, उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, पंजाब, मध्य प्रदेश और हिमाचल प्रदेश क्षेत्रों में बोली जाती है। भद्रवाही भाषा का शब्द क्रम एसओवी है। इन 17 पश्चिमी पहाड़ी भाषाओं में से भट्टियाली, बिलासपुरी, चंबेली, चुरहही, हिंदूरी, कांगड़ी, किन्नौरी, मंडेली, पहाड़ी-महासू, पहाड़ी-कुल्लू, सिरमौरी और पंगवाली भारत के हिमाचल प्रदेश राज्य में बोली जाती हैं; और गद्दी 6 भारतीय राज्यों अर्थात् दिल्ली, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, जम्मू और कश्मीर और उत्तर प्रदेश में बोली जाती है; और डोगरी जम्मू और कश्मीर राज्य के जम्मू में बोली जाती है; और जौनसारी उत्तराखंड राज्य में बोली जाती है; और पहाड़ी-पोटवारी पाकिस्तान और कश्मीर राज्य में बोली जाती है।

1916 में, सर जॉर्ज ग्रियर्सन (भारतीय भाषा सर्वेक्षण, खंड VIII, भाग-1) ने कश्मीरी की बोलियों में से एक के रूप में भद्रवाही का उल्लेख किया। उनका मानना है कि कश्मीरी भाषा कश्मीर घाटी की भाषा है। बोली के रूप में यह दक्षिण-पश्चिम में किश्तवार की घाटी में फैल गई है, और दक्षिण में यह पीर पंजाल रेंज के ऊपर से चिनाब नदी के उत्तर में स्थित निचली पहाड़ियों में बहती है, जहां यह फिर से प्रकट होती है। कई मिश्रित बोलियों में (जैसे भद्रवाही, किश्तवाड़, सिराजी, पोगुली और रामबानी)। 2013 में, डॉ. अमिताभ विक्रम द्विवेदी ने इस भाषा को वर्णनात्मक व्याकरण परंपरा में प्रलेखित किया।

(भद्रवाही भाषा पर डॉ. अमिताभ विक्रम द्विवेदी के शोध पत्र के अंश)

"कोई मनुष्य हरि के प्रति समर्पित है,
तो वह हरि का हो जाता है।

- जगद्गुरु रामानंदाचार्य"

अपौरुषेय वेद

भारतीय आस्तिक दर्शनशास्त्रके मतमें शब्दके नित्य होनेसे उसका अर्थके साथ स्वयम्भू-जैसा सम्बन्ध होता है। वेदमें शब्दको नित्य समझनेपर वेदको अपौरुषेय (ईश्वरप्रणीत) माना गया है। निरुक्तकार भी इसका प्रतिपादन करते हैं। आस्तिक दर्शनने शब्दको सर्वश्रेष्ठ प्रमाण मान्य किया है।

इस विषयमें मीमांसा-दर्शन तथा न्याय-दर्शनके मत भिन्न-भिन्न हैं। जैमिनीय मीमांसक, कुमारिल आदि मीमांसक, आधुनिक मीमांसक तथा सांख्यवादियोंके मतमें वेद अपौरुषेय, नित्य एवं स्वतः प्रमाण हैं। मीमांसक वेदको स्वयम्भू मानते हैं। उनका कहना है कि वेदकी निर्मितिका प्रयत्न किसी व्यक्ति-विशेषका अथवा ईश्वरका नहीं है। नैयायिक ऐसा समझते हैं कि वेद तो ईश्वरप्रोक्त है। मीमांसक कहते हैं कि भ्रम, प्रमाद, दुराग्रह इत्यादि दोषयुक्त होनेके कारण मनुष्यके द्वारा वेद-जैसे निर्दोष महान् ग्रन्थरत्नकी रचना शक्य ही नहीं है। अतः वेद अपौरुषेय ही है। इससे आगे जाकर नैयायिक ऐसा प्रतिपादन करते हैं कि ईश्वरने जैसे सृष्टि की, वैसे ही वेदका निर्माण किया; ऐसा मानना उचित ही है।

श्रुतिके मतानुसार वेद तो महाभूतोंका निःश्वास (यस्य निःश्वसितं वेदा") है। श्वास-प्रश्वास स्वतः आविर्भूत होते हैं, अतः उनके लिये मनुष्यके प्रयत्नकी अथवा बुद्धिकी अपेक्षा नहीं होती। उस महाभूतका निःश्वासरूप वेद तो अदृष्टवशात्, अबुद्धिपूर्वक स्वयं आविर्भूत होता है।

वेद नित्य-शब्दकी संहति होनेसे नित्य है और किसी भी प्रकारसे उत्पाद्य नहीं है; अतः स्वतः आविर्भूत वेद किसी भी पुरुषसे रचा हुआ न होनेके कारण अपौरुषेय (ईश्वरप्रणीत) सिद्ध होता है। इन सभी विचारोंको दर्शनशास्त्रमें अपौरुषेयवाद कहा गया है।

अवैदिक दर्शनको नास्तिक दर्शन भी कहते हैं, क्योंकि वह वेदको प्रमाण नहीं मानता, अपौरुषेय स्वीकार नहीं करता। उसका कहना है कि इहलोक (जगत्) ही आत्माका क्रीडास्थल है, परलोक (स्वर्ग) नामकी कोई वस्तु नहीं है, 'काम एवैकः पुरुषार्थः'- काम ही मानव-जीवनका एकमात्र पुरुषार्थ होता है, 'मरणमेवापवर्गः ' - मरण (मृत्यु) माने ही मोक्ष (मुक्ति) है, 'प्रत्यक्षमेव प्रमाणम्' - जो प्रत्यक्ष है वही प्रमाण है (अनुमान प्रमाण नहीं है)।

'न धर्मः न मोक्षः' - न तो धर्म है न मोक्ष है। अतः जबतक शरीरमें प्राण है, तबतक सुख प्राप्त करते हैं - इस विषयमें नास्तिक चार्वाक-दर्शन स्पष्ट कहता है-

यावज्जीवं सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत् ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥

अर्थात् जबतक देहमें जीव है तबतक सुखपूर्वक जीयें, किसीसे ऋण ले करके भी घी पीयें; क्योंकि एक बार देह (शरीर) मृत्युके बाद जब भस्मीभूत हुआ, तब फिर उसका पुनरागमन कहाँ ? अतः 'खाओ, पीओ और मौज करो'- यही है 'नास्तिक दर्शन' या 'अवैदिक- दर्शन' का संदेश। इसको लोकायत-दर्शन, बार्हस्पत्य-दर्शन तथा चार्वाक-दर्शन भी कहते हैं।

चार्वाक-दर्शन शब्दमें 'चर्व' का अर्थ है - खाना। इस 'चर्व' पदसे ही 'खाने-पीने और मौज' करनेका संदेश देनेवाले इस दर्शनका नाम 'चार्वाक-दर्शन' पड़ा है। 'गुणरत्न' ने इसकी व्याख्या इस प्रकारसे की है- परमेश्वर, वेद, पुण्य-पाप, स्वर्ग-नरक, आत्मा, मुक्ति इत्यादिका जिसने 'चर्वण' (नामशेष) कर दिया है, वह 'चार्वाक-दर्शन' है। इस मतके लोगोंका लक्ष्य स्वमतस्थापनकी अपेक्षा परमतखण्डनके प्रति अधिक रहनेसे उनको 'वैतण्डिक' कहा गया है। वे लोग वेदप्रामाण्य मानते ही नहीं।

(१) जगत्, (२) जीव, (३) ईश्वर और (४) मोक्ष- ये ही चार प्रमुख प्रतिपाद्य विषय सभी दर्शनोंके होते हैं। आचार्य श्रीहरिभद्रने 'षड्दर्शन-समुच्चय' नामका अपने ग्रन्थमें (१) न्याय, (२) वैशेषिक, (३) सांख्य, (४) योग, (५) मीमांसा और (६) वेदान्त- इन छःको वैदिक दर्शन (आस्तिक दर्शन) तथा (१) चार्वाक, (२) बौद्ध और (३) जैन-इन तीनको 'अवैदिक दर्शन' (नास्तिक-दर्शन) कहा है और उन सबपर विस्तृत विचार प्रस्तुत किया है। वेदको प्रमाण माननेवाले आस्तिक और न माननेवाले नास्तिक हैं, इस दृष्टिसे उपर्युक्त न्याय-वैशेषिकादि षड्दर्शनको आस्तिक और चार्वाकादि दर्शनको नास्तिक कहा गया है।

दर्शनशास्त्रका मूल मन्त्र है- 'आत्मानं विद्धि।' अर्थात् आत्माको जानो। पिण्ड-ब्रह्माण्डमें ओतप्रोत हुआ एकमेव आत्म-तत्त्वका दर्शन (साक्षात्कार) कर लेना ही मानव-जीवनका अन्तिम साध्य है, ऐसा वेद कहता है। इसके लिये तीन उपाय हैं - वेदमन्त्रोंका श्रवण, मनन और निदिध्यासन -

श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः ।
मत्या तु सततं ध्येय एते दर्शनहेतवे ॥

इसीलिये तो मनीषी लोग कहते हैं - 'यस्तं वेद स वेदवित्।' अर्थात् ऐसे आत्मतत्त्वको जो सदाचारी व्यक्ति जानता है, वह वेदज्ञ (वेदको जाननेवाला) है।

वेदवाङ्मय-परिचय एवं अपौरुषेयवाद (दण्डीस्वामी श्रीमद् दत्तयोगेश्वरदेवतीर्थजी महाराज) से उद्धृत

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा स स्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः।।

हे देव, हम अपने कानों से शुभ सुनें, अपनी आँखों से शुभ देखें, स्थिर शरीर से संतोषपूर्ण जीवन जियें, और देवों द्वारा दी गयी आयु उन्हें समर्पित करें।

(शुक्ल यजुर्वेद, कण्व संहिता ७.२१)

गुणैरुत्तमतां याति नोच्चैरासनसंस्थितः।
प्रासादशिखरस्थोऽपि काकः किं गरुडायते ॥

उत्तमता गुणों से आती है, न कि ऊँचे स्थान से, कौआ महल के शिखर पर बैठकर गरुड नहीं बन जाता।

- चाणक्य नीति 16-06

कलयुग है।
चरित्रहीन होना
कोई व्यथा नहीं है,
कोई कथा भी नहीं है,
बस एक प्रथा है।
मजदूर, अफसर, रिक्शेवाले, कारवाले,
गरीब, अमीर, ठेलेवाले, दुकानवाले,
छोकरे, गुंडे, अधिकारी, मवाली,
अपराधी, पुलिस, नेता, अभिनेता,
टीचर, फटीचर, कमजोर, ताकतवर
सभी हैं इसमे शामिल।
कोई करता है छेड़-छाड़,
कोई फिरता है बनकर छुट्टा-सांड।
किसी के पास है देने को,
तो कोई ले लेना चाहता है।
व्यापार है-
नकद-उधार, डेबिट-क्रेडिट
सुबह, दोपहर, शाम, रात
चलती है गाड़ी, उड़ती है धूल।
खरर-खचक, ढ़क ढ़का ढ़क
उछल-कूद, भागम-भाग।
सुर्खियां हैं, पर खबरें हैं कम।
प्यार नहीं है, उपभोग है।
प्यास नहीं है, भूख है।
कोई मुक्ति नहीं चाहता,
क्योंकि सभी मुक्त हैं।

- डॉ. अमिताभ विक्रम द्विवेदी

("चिनार का पत्ता" से कविता उद्धृत है)

शिव-पार्वती एवं दस महाविद्याओं को प्रदर्शित करता मधुबनी चित्र

मधुबनी चित्रकला

मधुबनी चित्रकला बिहार के दरभंगा, पूर्णिया, सहरसा, मुजफ्फरपुर, मधुबनी एवं नेपाल के कुछ क्षेत्रों की प्रमुख चित्रकला है। प्रारम्भ में रंगोली के रूप में रहने के बाद यह कला धीरे-धीरे आधुनिक रूप में कपड़ो, दीवारों एवं कागज पर उतर आई है। मधुबनी चित्रकला बिहार की एक विश्वविख्यात चित्रकला शैली है। मधुबनी चित्रकला मिथिला की लोक चित्रकला है, इसलिए इसे मिथिला चित्रकला भी कहते हैं। इस शैली के चित्र दो प्रकार के होते हैं - भित्ति चित्र और अरिपन। इस चित्रकला में मिथिलांचल की संस्कृति को दिखाया जाता है। भित्ति चित्रों के अलावा अल्पना का भी बिहार में काफी चलन है। इसे बैठक या फिर दरवाजे के बाहर बनाया जाता है। पहले इसे इसलिए बनाया जाता था ताकि खेतों में फसल की पैदावार अच्छी हो लेकिन आजकल इसे घर के शुभ कामों में बनाया जाता है। चित्र बनाने के लिए माचिस की तीली व बाँस की कलम को प्रयोग में लाया जाता है। रंग की पकड़ बनाने के लिए बबूल के वृक्ष की गोंद को मिलाया जाता है। समय के साथ मधुबनी चित्र को बनाने के पीछे के मायने भी बदल चुके हैं, लेकिन ये कला अपने आप में इतना कुछ समेटे हुए हैं कि यह आज भी कला के कद्रदानों की चुनिन्दा पसंद में से है। चित्रण से पूर्व हस्त नर्मित कागज को तैयार करने के लिऐ कागज पर गाय के गोबर का घोल बनाकर तथा इसमें बबूल का गोंद डाला जाता है। सूती कपड़े से गोबर के घोल को कागज पर लगाया जाता है और धूप में सुखाने के लिए रख दिया जाता है।

मधुबनी चित्रकला दीवार, केन्वास एवं हस्त निर्मित कागज पर वर्तमान समय में चित्रकारों द्वारा बनायी जाती हैं। मधुबनी भित्ति चित्र में मिट्टी (चिकनी) व गाय के गोबर के मिश्रण में बबूल की गोंद मिलाकर दीवारों पर लिपाई की जाती है। गाय के गोबर में एक खास तरह का रसायन पदार्थ होने के कारण दीवार पर विशेष चमक आ जाती है। इसे घर की तीन खास जगहों पर ही बनाने की परंपरा है, जैसे- पूजास्थान, कोहबर कक्ष (विवाहितों के कमरे में) और शादी या किसी खास उत्सव पर घर की बाहरी दीवारों पर। मधुबनी पेंटिंग में जिन देवी-देवताओं का चित्रण किया जाता है, वे हैं- मां दुर्गा, काली, सीता-राम, राधा-कृष्ण, शिव-पार्वती, गौरी-गणेश और विष्णु के दस अवतार इत्यादि। इन तस्वीरों के अलावा कई प्राकृतिक और रम्य नजारों की भी पेंटिंग बनाई जाती है। पशु-पक्षी, वृक्ष, फूल-पत्ती आदि को स्वस्तिक की निशानी के साथ सजाया-संवारा जाता है।

कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरिच दशा चक्रनेमिक्रमेण।।

किसी को भी सदा सुख और सदा दुख नही मिलता। पहियों के घेरे की तरह (जीवन में सुख दुख) ऊपर नीचे होते ही रहते है।

मेघदूतम् 2.46

• कुषाण काल की सूर्य देव की प्राचीन प्रतिमा

© हिन्दी प्रकोष्ठ (श्री माता वैष्णो देवी विश्वविद्यालय)